डॉ॰ बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल॰ना॰मि॰वि॰वि॰दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

पाठ्य सामग्री,

स्नातक हिन्दी प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष, द्वितीय पत्र के लिए।

दिनांक- 22.07.2020

व्याख्यान संख्या-19 (कुल सं. 55)

* सप्रसंग व्याख्या

मूल अवतरण:-

इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं।।

प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'स्वर्ण-मंजूषा' से उद्धृत है। इसके रचयिता रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवि बिहारी हैं, जिनकी रचना 'बिहारी सतसई' हिन्दी साहित्य में लोकप्रियता के क्षेत्र में रामचरितमानस के बाद सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक मानी जाती है।

डॉ० बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल०ना०मि०वि०वि०दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

प्रस्तुत दोहा विरह की उद्वेग-दशा से संदर्भित है। मध्या परकीया नायिका अपनी अंतरंग सखी से अपने हृदय की बात कह रही है।

नायिका कह रही है कि हे सखी, मेरी इन दुखियारी आँखों के लिए मानो सुख बनाया ही नहीं गया, क्योंकि नायक के सामने उपस्थित रहने पर, जब देखने का उपयुक्त अवसर रहता है, तब लज्जा के कारण इन आँखों से इच्छानुसार देखते नहीं बनता और जब वे सामने नहीं रहते हैं, तब उन्हें देखे बिना व्याकुलता होती है।

वस्तुतः प्रस्तुत दोहे में प्रेम एवं लज्जा की भावना की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम की अधिकता के कारण नायक को देखे बिना नायिका रह नहीं पाती है। परंतु, उसे सामाजिकता का बोध भी है और निभाने की मजबूरी भी; अतः नायक के सामने आ जाने पर वह उन्हें जी भर निहार भी नहीं पाती है। इसी भावना की अभिव्यक्ति कवि ने इस दोहे में उत्तम रूप में की है।

प्रस्तुत दोहे में काव्य लिंग अलंकार की छटा दर्शनीय है।

डॉ॰ बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल॰ना॰मि॰वि॰वि॰दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

---

* सप्रसंग व्याख्या (2)

लाज-लगाम न मानही, नैना मो बस नाहिं।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिं।।

प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'स्वर्ण-मंजूषा' से उद्धृत है। इसके रचयिता रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवि बिहारी हैं, जिनकी रचना 'बिहारी सतसई' हिन्दी साहित्य में लोकप्रियता के क्षेत्र में रामचरितमानस के बाद सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक मानी जाती है।

प्रस्तुत दोहा नायिका के प्रेम के आधिक्य से संदर्भित है। नायिका अभी परकीया है और उसे नायक की ओर खुलकर देखने की सामाजिक स्वीकृति नहीं है। अतः उसकी सखी उसे समझाती है कि नायक की ओर इस प्रकार विवश होकर देखते रहना उचित नहीं है। तुम्हें अपनी आँखों को लज्जा भाव से नियंत्रण में रखना चाहिए। इस पर नायिका अपनी विवशता का भाव अभिव्यक्त करती है।

नायिका सखी से कहती है कि ये मेरी आँखें लज्जा रूपी लगाम को नहीं मान रही है। अर्थात् आँखों पर मेरा वश नहीं रह गया है और लज्जा इसे रोक

पाने में असमर्थ है। ये आँखें मुँहजोर घोड़े की तरह लज्जा रूपी लगाम को नहीं मान रही है और खींचते रहने पर भी चली ही जाती है।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मुँहजोर घोड़ा लगाम खींचते रहने पर भी मनचाही दिशा में बढ़ता ही चला जाता है। उसी प्रकार ये आँखें भी लज्जा के कारण झुककर नहीं रह पाती हैं, बल्कि नायक की ओर देखने ही लगती हैं।

प्रस्तुत दोहे में रूपक अलंकार है; साथ ही तीसरी विभावना से परिपुष्ट पूर्णोपमा अलंकार है।